www.researchvidyapith.com ISSN (Online): 3048-7331

Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal

(International Open Access, Peer-reviewed & Refereed Journal)

(Multidisciplinary, Monthly, Multilanguage)

*** Vol-2* *Issue-4* *April 2025***

कौटिल्य का कृषि–दर्शनः साहित्यिक अवधारणा और पुरातात्त्विक प्रमाणों की संगति

डॉ0 राजपाल सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, सी.आर.एम. जाट कॉलेज, हिसार

कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र न केवल प्राचीन भारत की राजनीति और अर्थव्यवस्था का दर्पण है, बल्कि उसमें वर्णित कृषि संबंधी नीतियाँ उस काल की आर्थिक संरचना में कृषि की केंद्रीय भूमिका को भी स्पष्ट करती हैं। कौटिल्य का कृषि–दर्शन केवल उत्पादन की विधियों तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें राज्य द्वारा भूमि प्रबंधन, सिंचाई, कर–प्रणाली, कृषि–सुरक्षा, और कृषक कल्याण जैसी नीतियों का भी स्पष्ट विवरण मिलता है। कौटिल्य ने कृषि को राजस्व का मुख्य स्रोत माना और कृषकों की सामाजिक एवं आर्थिक सुरक्षा को सुनिश्चित करने हेतु विधिसम्मत व्यवस्था का सुझाव दिया। भूमि की उर्वरता के अनुसार उसका वर्गीकरण, बीज चयन, वर्षा और जलसंरक्षण की तकनीकें, तथा कृषि कार्य में राज्य की भागीदारीकृइन सभी बातों का उल्लेख अर्थशास्त्र में मिलता है। इन साहित्यिक वर्णनों की पुष्टि अनेक पुरातात्त्विक प्रमाणों से भी होती है। मौर्यकालीन शिलालेख, मिट्टी के बर्तन, कृषि उपकरण, जलसंरचना (जैसे–बाँध, तालाब), और सिक्के तत्कालीन कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था के भौतिक साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार, कौटिल्य का कृषि–दर्शन साहित्यिक दृष्टि से जितना समृद्ध है, उतना ही पुरातात्त्विक दृष्टि से भी प्रामाणिक है। यह दर्शन न केवल मौर्यकालीन कृषि व्यवस्था को समझने में सहायक है, बल्कि राज्य और समाज के बीच आर्थिक उत्तरदायित्वों के संतुलन को भी उजागर करता है।

प्राचीन भारतीय इतिहास में मौर्य साम्राज्य का विशेष महत्व है। यह ऐतिहासिक युग का पहला ऐसा राजवंश था, जिसके शासकों ने लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष को अपने अधीन किया। नन्द वंश का अंत कर चन्द्रगुप्त मौर्य ने एक विशाल भू–भाग पर अपना शासन स्थापित किया, जिसे उनके पुत्र बिन्दुसार ने स्थिर रूप से बनाए रखा और उनके पौत्र अशोक महान ने इसे और विस्तार देकर चरम उत्कर्ष तक पहुँचा दिया। सम्राट अशोक न केवल एक शक्तिशाली शासक थे, बल्कि उन्होंने भारतीय संस्कृति, धर्म और सभ्यता को देश–विदेश तक पहुँचाने में जो भूमिका निभाई, वह विश्व इतिहास में अद्वितीय मानी जाती है। मौर्य साम्राज्य की स्थापना में आचार्य कौटिल्य (चाणक्य) का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा। नन्द वंश के पतन और मगध साम्राज्य के पुनर्गठन की जो योजना बनी, उसके सूत्रधार कौटिल्य ही थे। उनके द्वारा रचित अर्थशास्त्र ग्रंथ मौर्यकालीन इतिहास, विशेषतः चन्द्रगुप्त के समय की राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति को समझने का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। मौर्य शासन व्यवस्था के स्वरूप को स्पष्ट करने में इतिहासकार मुख्यतः इस ग्रंथ पर निर्भर रहते हैं। महाकवि दण्डी ने दशकुमारचरित में लिखा है कि आचार्य विष्णुगुप्त (कौटिल्य) ने मौर्यों के लिए छह हजार श्लोकों में नीति का संहिताकरण किया। साथ ही, मौर्यकालीन सिक्कों से उस समय की आर्थिक स्थिति तथा धार्मिक प्रवृत्तियों का भी ज्ञान होता है। इस काल के साहित्यिक और पुरातात्त्विक स्रोतों के माध्यम से तत्कालीन कृषि व्यवस्था की स्पष्ट जानकारी प्राप्त होती है, जो मौर्यकालीन समाज और अर्थव्यवस्था को समझने में सहायक सिद्ध होती है।

वर्तमान समय के समान मौर्ययुग में भी भारत के आर्थिक जीवन में खेती का स्थान सर्वप्रधान था। मैगस्थनीज

ने किसानों के विषय में कहा था कि युद्ध करने तथा अन्य राजकीय सेवाओं से मुक्त होने के कारण वे अपना सारा समय खेती में ही लगाते हैं।[1] एरियन के अनुसार भारत में बहुत से लोग किसान हैं जो कि अन्न से अपना निर्वाह करते हैं।[2] यद्यपि मौर्य युग में भी कृषि ही भारत का मुख्य व्यवसाय था, पर आजकल के समान उस समय कृषकों की दशा हीन और असंतोषजनक नहीं थी। इस संबंध में मेगस्थनीज के भारत–वर्णन से कतिपय उद्धरण महत्त्व के हैं –– भूमि का अधिक भाग सिंचाई में है। अतः उसमें वर्ष में दो फसल तैयार होती हैं।[3] यहां के लोग निर्वाह की सब सामग्री बहुतायत से पाकर प्रायः मामूली डील डौल से अधिक होते हैं, और अपनी गर्वीली चेष्टा के लिए प्रसिद्ध हैं।

भूमि पशुओं के निर्वाह योग्य तथा अन्य खाद्य पदार्थ भी प्रदान करती है। अतः यह माना जाता है कि भारत में अकाल कभी नहीं पड़ा है और खाने की वस्तुओं की महगाई साधारणतया कभी नहीं हुई है। चूंकि यहां वर्ष में दो बार वर्षा होती है––एक जाड़े में जब कि गेहूं की बुवाई होती है और दूसरी गरमी के टिकाव के समय जो कि तिल और ज्वार बोने के लिए उपयुक्त ऋतु है अतएव भारतवर्ष में लोग दो फसलें काटते हैं और यदि इनमें से एक फसल बिगड़ भी जाती है तो लोगों को दूसरी फसल का पूरा विश्वास रहता हैं इसके अतिरिक्त एक साथ होने वाले फल ओर मूल जो दलदलों में उपजते हैं और भिन्न–भिन्न मिठास के होते हैं, मनुष्यों को प्रचुर निर्वाह–सामग्री प्रदान करते हैं। बात यह है कि देश के प्राय समस्त मैदानों में ऐसी सीलन रहती है जो समभाव से उपजाऊ होती है, चाहे यह सीलन नदियों द्वारा प्राप्त हुई हो और चाहे गरमी की वर्षा के जल द्वारा जो कि प्रत्येक वर्ष एक नियत समय पर आश्चर्यजनक क्रम के साथ बरसा करता है। कड़ी मूलों को और विशेषतया को पकाती है।[4] दुर्भिक्ष या अकाल की संभावना का कारण केवल यही नहीं था कि इस देश में वर्षा नियमित रूप से होती थी पर भूमि की सिंचाई का अन्य प्रबंध भी था। इस विषय में स्थनीज ने लिखा है परंतु इतने पर भी भारतवासियों में बहुत सी ऐसी प्रथाएं हैं जो उनके बीच अकाल पड़ने की संभावना को रोकने में सहायता देती हैं। दूसरी जातियों में युद्ध के समय भूमि को नष्ट करने और इस प्रकार उसे परती व ऊसर कर डालने की चाल है पर इसके विपरीत भारतवासियों में जो कृषक समाज को पवित्र मानते है भूमि जोतने वाले चाहे उनके पड़ोस में युद्ध हो रहा हो, तो भी किसी प्रकार के भय की आशंका से विचलित नहीं होते। दोनों पक्षों के लड़ने वाले युद्ध के समय एक दूसरे का संहार करते हैं, परंतु जो खेती में लगे हुए हैं उन्हें सर्वतोभाव से निवि पड़ा रहने देते हैं। इसके सिवाय न तो वे शत्रु के देश का अग्नि से सत्यानाश करते हैं और उनके पेड़ काटते हैं।[5]

भारत में कृषक समाज को पवित्र और अवध्य माना जाता था, इस बात को मैगस्थनीज ने अनेक बार दोहराया है। एक अन्य स्थान पर उसने लिखा है–शत्रु पिंज भूमि पर काम करते हुए किसी किसान को हानि नहीं पहुंचाता क्योंकि इस वर्ग के लोग सर्वसाधारण जनता द्वारा हितकारी माने जाने के कारण सब हानियों से बचाये जाते है।[6] इसी प्रकार कौटिलय के अर्थशास्त्र के अध्ययन से हमें पता चलता है कि देश के आर्थिक जीवन का बहुत बड़ा भाग राज्य के सीधे नियंत्रण में था। राज्य द्वारा जतने श्रमिकों को काम दिया जाता था उतना अन्य किसी द्वारा नहीं। देश की कृषि, उद्योग तथा व्यापार पर राज्य का नियंत्रण था। राजा की निजी जमीन के रूप में देश की कृषि का बहुत बड़ा भाग सीधे–सीधे राज्य के हाथों में था। यदि करके रूप में उत्पादन का एक निश्चित अंश मिलता रहे तो खेती के काम में प्रत्यक्ष रूप से राज्य कोई हस्तक्षेप नहीं करता था, परंतु देश में कृषि उत्पादन को संगठित करना तथा उसे बढाना राज्य का काम था। इसके लिए राज्य नई बस्तियां बसाने की योजनाएं बनाता था। यदि कहीं आबादी बहुत धनी होती थी तो वहां के कुछ लोगों को नए तथा वीरान इलाकों में बसने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता था। विदेशवासियों को देश में आकर बसने में भी राज्य सहायता करता था।

गांव के जितने इलाके में घर बने होते थे उसके अलावा प्रत्येक गांव के कृषि जीवन की पूरी व्यवस्था इन स्थानों में होती थी 1. केदार अर्थात् खेतों में फसल बोई जाती है। 2. पुष्पवाट, अर्थात फुलवाडिया 3. फलवाट, फलो के बाग, 4, शण्द्र, अर्थात केले तथा गन्ने आदि के खेत और 5. मूलवाय, अर्थात जहां जैसे अदरक, हल्दी आदि के खेत। इस प्रकार गांव में अनाज, फल फूल, सब्जियों, मसाले, ईख तथा केले सभी चीजों की खेती होती थी। मेगास्थनीज की कृषि उपज के बारे में कहता है– अनाज के अतिरिक्त सारे भारतवर्ष में, जो नदी नालों की बहुतायत के कारण भले प्रकार सींचा हुआ रहता है, जुआर इत्यादि भी बहुत पैदा होता हैं अन्य अनेक प्रकार की दालों, चावल और वास्फोरम कहलाने वाला एक पदार्थ तथा और बहुत से खाद्योपयोगी पौधे उत्पन्न होते हैं, जिनमें से बहुतेरे तो एक साथ होते हैं।[7] कौटिल्य ने इस विषय में लिखा है कि "वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में शालि

(एक प्रकार धान) ब्रीहि (चावल), कोद्रव (कोदो का धान), तिल, दारक (संभवतः दाल) और वरक (मोठ) बोये जाएं। वर्षा के मध्य में मूंग, उड़द और शैव्य बोये जाएं। वर्षा ऋतु की समाप्ति हो जाने पर कुसुरभ (कुसंवा) मसूर, कुल्थी, जौ, गोधूम (गेहूं) चना, अलसी और सरसों को बोया जाए। कौटलीय अर्थशास्त्र में जो ये विभिन्न अन्न आदि उल्लिखित है, वे अब भी भारत में खरीफ और रबी की फसलों में बोये जाते हैं।

मौर्य युग में साल में तीन फसलें पैदा की जाती थी रबी, खरीफ और केदार (जायद)। कैसी भूमि में कौनसी फसल बोयी जाए इस विषय का भी कौटिल्य ने निरूपधा किया है। जो फेनाघात (नदी के जल से जो आप्लावित हो जाती है उस पर वल्लीफल (खरबजा, तरबूज, लौकी आदि) बोयी जाएं, जो भूमि परिवाहान्त (जिस पर सिंचाई होती हो), उसपर पिप्पली, मृद्धीका (अंगूर) और ईख बोया जाएं जो भूमि कूपपर्यन्त हो उस पर शाक और मूल बोए जाएं, जो भूमि हरणीपर्यन्त जहां पहले तालाब रहे हो और जो उनके सूख जाने पर भी गीली रहती हो उस पर हरी फसले बोयी जाए और क्यारियों की मेड़ों पर सुगन्धि, भैषज्य आदि के पौधे लगाए जाए।[8] अर्थशास्त्र में अन्य अनेक अन्न शाक कन्द मूल–फल आदि का उल्लेख किया है। इनमें मिर्च, अदरक, गौर सर्वप, धनिया, जीरा, निम्बू, आम आंवला, बेर, झरबेरी, फालसा, जामुन, कटहल ओर अनार उल्लेखनीय है।[9]

फसल की उत्कृष्टता के लिए बीजों को कैसे तैयार किया जाए और खेतों में किस फसल के लिए कौन सी खाद डाली जाए. इसका भी कौटलीय अर्थशास्त्र में निरूपण किया गया है। धान के बीजो को सात रात ओस में रखा जाताथा, और दिन में उन्हें सुखाया जाता था। कोशीधान्यों के लिए यही क्रिया तीन दिन तक की जाती थी। ईख आदि की आंखों को खेत में गाड़ने से पूर्व ईख के टुकड़ों के कटे हुए भागों पर मधु घृत सुअर की चरबी और गोबर को मिलाकर लगाया जाता था। कन्दों को बोने से पहले उनके छेदों पर मधु और घृत का लेप किया जाता था और बिनौलों को बोने से पूर्व उन्हें गोबर से मल लिया जाता था।[10]

खाद के लिए गोबर और हडडी के चूरे का प्रयोग किया जाता था। जब अंकुर निकल आए तो उन पर मछलियों की खाद और आक का दूध डाला जाता था। मौर्य युग के लोग अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए देवपूजा पर विश्वास रखते थे और अनेक प्रकार के अनुष्ठान भी किया करते थे। इसलिए कौटिल्य ने लिखा है कि जब बीजो को बोना प्रारम्भ किया जाए, तो कुछ बीजों को पानी में भिगोकर और बीच में सुवर्ण रखकर यह मंत्र पढ़ा जाए प्रजापति और काश्यप देवताओं को सदा नमस्कार है। हमारी कृषि में सदा वृद्धि हो, और हमारे बीजों ओर धन में देवी का निवास हो।

कृषि योग्य भूमि का बड़ा भाग जल से सींचा जाता है। उसके लिए सिंचाई का समुचित प्रबंध है। कुछ (कर्मचारी) नदियों का निरीक्षण करते हैं। वे मिश्र की तरह भूमियों को नापते भी हैं। उन मार्गों पर विशेष रूप से दृष्टि रखते हैं, जिनमें जल बड़ी धारा से पृथक हो छोटी नालियों में विभक्त होता है। सिंचाई का प्रबन्ध राज्य की ओर से किया जाता था। सिंचाई के अलग–अलग साधनों के अनुसार जो जल कर वसूल किया जाता था, वह राज्य की आय का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत था। जलद्वारों की सहायता से राज्य पानी के वितरण पर नियंत्रण रखता था। तालाब तथा नहरें खुदवाकर जल के नए स्त्रोतो का निर्माण करने की जिम्मेदारी भी राज्य पर ही थी। इस संबंध में मेगस्थनीज का कथन उल्लेखनीय है––उस समय के पालि ग्रंथों में (विशेष रूप से जातक कथाओं में) इस बात का उल्लेख मिलता है कि गांव की खेती की जमीन अलग–अलग लोगों के बीच बंटी हुई थी और सबके खेत सहकारी सिंचाई के लिए खोदी गई नहरों द्वारा एक दूसरे से अलग कर दिए गए थे।[11] मगध के खेतों की तुलना, जो इस प्रकार सिंचाई की नालियों द्वारा आयताकार अथवा टेढेमेढ़े खेतों में बांट दिए गए थे, बुद्ध ने अपने भिक्षुओं के वस्त्रों से की है, जो फटे–पुराने कपड़ों के छोटे–छोटे टुकड़ों को जोड़कर बनाए जाते थे।[12]

सिंचाई के लिए तालाबों को भी खोदा जाता था। कौटिलीय ने इनके प्रयोग हेतु कुछ नियमों का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार बाद में बने हुए नीचे के तालाब से सींचे जाने वाले खेत को ऊपर के तालाब के पानी से न सींचा जाए। नीचे के तालाब में आते हुए ऊपर के तालाब का पानी तब तक न रोका जाए, यदि नीचे का तालाब तीन वर्ष तक बेकार न पड़ा हो। इस नियम का उल्लंघन करने वाले को प्रथम साहस दण्ड दिया जाए और उसके तालाब का पानी निकलवा दिया जाए।[13] कौटलय आगे कहते हैं कि पांच वर्ष बाद यदि जल आदि का कोई सीमाबंध बेकार रहे उस दिशा में उस पर उसके स्वामी का हक नहीं रहता है, किंतु विपत्तियों के कारण यदि उसको उपयोग में न लाया गया हो तो कोई बात नहीं।[14] नए सिरे से तालाब ओर सीमाबन्ध बनवाने वाले व्यक्ति पर पांच वर्ष तक सरकारी टैक्स न लगाया जाए। यदि वह जीर्णोद्वार कराए तो चार वर्ष तक, यदि उनको

बढाए तो तीन वर्ष तक सरकारी टैक्स न लिया जाए। जिन तालाबों में नदी का पानी न आता हो और किसान रहट आदि लगाकर अपने खेतों, बगीचों तथा फुलवाडियों में से पानी देते हों उनकी उपज पर सरकार उतना ही कर लगाए जितने से उन लोगों को कोई कष्ट न हो।[15] आगे कौटिल्य कहते हैं कि जिन किसानों के तालाब नहीं है वे भी कीमत देकर कुछ बंधी हुई रकम देकर अपनी उपज का कुछ हिस्सा देकर अथवा मालिक की आज्ञा से दूसरे तालाबों से पानी ले सकते हैं। किंतु उनके लिए यह आवश्यक है कि वे तालाब, रहट आदि की बराबर मरम्मत करते रहे। मरम्मत न करने पर जो नुकसान होगा उसका दुगुना जुर्माना उन्हें भुगतना पड़ेगा। तथा जो किसान अपनी बारी न होने पर पानी ले उसको छह पण का दण्ड दिया जाए और उसको भी यही दण्ड दिया जाए जो प्रमाद से, अपनी बारी पर पानी लेते हुए दूसरे का पानी रोक दे।[16] इस प्रकार हम पाते हैं कि मौर्य कालीन सिंचाई व्यवस्था कितनी संगठित रूप से कार्य कर रही थी और इसमें गलती या चालबाजी की गुंजाइश बिल्कुल भी नहीं थी।

तालाबों और नहरों के अतिरिक्त मौर्यकाल में भी आज की भांति वर्षा सिंचाई का एक प्रमुख साधन था। किस ऋतु में किन दशाओं में और किन प्रदेशों में कितनी वर्षा होती है, इसका ठीक–ठाक ज्ञान प्राप्त कर खेती के लिए उसका उपयोग किया जाता था। वर्षा मापने के लिए विशेष प्रकार के कुण्ड बनाए जाते थे, जिनका मुख एक अरत्नि चौडा होता था। इन्हें कोष्ठागार के सम्मुख वर्षा को मापने के लिए रखा जाता था।[17] इसी ढंग से कुण्डों द्वारा वर्षा को माप कर जो परिणाम निकाला गया था, कौटल्य ने उसका उल्लेख इस प्रकार किया है–– जागल प्रदेशों में 16 द्रोण, अनूप (खादर) प्रदेशों में 24 द्रोण, अश्मक देश में 13 द्रोण, अवन्ति देश में 23 द्रोण और अपरान्त (पश्चिमी सीमान्त) तथा हिमालय के प्रदेश में अपरिमित वर्षा होती है।[18] द्रोण भार का अन्यतम मान होता था, जो 200 पल (एक पल 64 माषक) के बराबर होता था। एक निश्चित आकार के बने हुए (एक अरत्नि चौड़े) कुण्ड में जितना पानी एकत्र हो जाता था. उसके भार के आधार पर ही विभिन्न प्रदेशों में वर्षा की मात्रा को कौटल्य ने सूचित किया है।

पुरातात्विक साक्ष्य–

कुम्हरार में 45 फुट चौडी 10 फुट गहरी और 450 फुट लंबी जो नहर मिली है, वह मौर्यकालीन निर्धारित की गई है।19 यह संकेत किया गया है कि यह नहर सोन नदी और फिर गंगा नदी से मिली हुई थी जिसके रास्ते से चुनार की पत्थर की खदानों से एकाश्म स्तंभ लाए जाए थे।[20] अनुमानतः इस नहर का प्रयोग सिंचाई के लिए भी होता होगा। हाथी गुम्फा अभिलेख से पता चलता है कि कलिंग नगरी में तिवससत पुरानी नहर का अस्तित्व था। तिवससत शब्द के तीन सौ वर्ष और एक सौ तीन वर्ष दोनों अर्थ लगाए गए हैं। दूसरे अर्थ के आधार पर नहर के मूल निर्माण को मौर्यकाल के अंत में निर्धारित किया जा सकता है बशर्ते यह मान लिया जाए कि पुरालिपि के अनुसार हाथी गुम्फा अभिलेख की तिथि पहली सदी ई. पू. है। खाखेल का दावा है कि उसने पुरानी नहर का विस्तार किया। उसका अभिलेख बतलाता है कि उसने एक सौ तीन वर्ष पूर्व राजा नन्द द्वारा निकाली गई नहर को अपने शासन के पांचवे वर्ष में तनशूलि पथ से राजधानी में मंगवाया औरएक लाख मुद्राओं की लागत पर उसे खुदवाया।[21] स्पष्टतः यातायात और सिंचाई की सुविधा के लिए खाखेल ने इस बड़े काम को किया।

बेसनगर में भी एक पुरानी नहर संकेत मिले 1914–15 में इस स्थान उत्खनन के देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर ने कुछ दीवारें निकाली, जिसको उन्होंने सिंचाई की नहर अवशेष बतलाया।[22] कुम्हरार मौर्यकालीन नहर की तुलना में अपेक्षाकृत आकार में छोटी उत्खनित स्थल पर नहर सात फुट चौड़ी और पांच फुट छह इंच ऊंची थी। नहर की शाखा 185 फुट चार इंच लंबी थी।[23] भंडारकर ने उल्लेख किया है कि संभवतः बेस नदी तक जाती थी, उत्खन्न स्थल मुश्किल से फरलांग की दूरी पर है और इसी नदी से नहर पानी जाता होगा उनके मतानुसार अधिक संभवत है बेसनदी मूलतः (वर्तमान घाट पर) बांध से बंधी हो इसके पानी को खेतों सिंचाई के लिए ले जाता और उसके पूर्वी अथवा दाहिने तट प्राचीन नगरी विदिशा बसी हो भंडारकर अनुसार वर्तमान नहर जमा करने के लिए बनी थी। समझते बेसनगर नहर ऐसी नहर होगी जो बाढ़ के पानी से भर जाती है। मध्य भारत नदियां वर्षाऋतु अपने तटों ऊपर से निकलती हैं और ग्रीष्म ऋतु में जाती हैं। भण्डारकर अनुसार नहर 165 ई. पू. के काम कर रही थी इसका निर्माण मौर्य अथवा संभवतः प्राक् मौर्य काल में होगा। अतः उपर्युक्त दोनों नहरों निर्माण मौर्यकाल में जिनका उपयोग आगे भी होता कलिंग नहर विस्तार खाखेल किया। लेकिन मौर्योत्तर काल में नहरों के बनने ठोस सबूत अभी तक नहीं मिले हैं।[24]

कृषि सम्बन्धी नियम –

खेती यद्यपि मौर्यकाल जीविका का मुख्य साधन बन चुकी परंतु फिर भी उसके विकास लिए राजकीय प्रयास अनिवार्य थे। खेती मुख्य विकास राजकीय क्षेत्र हो रहा था और उसके लिए विशेष योग्यता प्राप्त अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी जिसे सीताध्यक्ष कहते थे। सीताध्यक्ष कृषि शास्त्र, शुल्वशास्त्र (भूमि के गुण दोष बताने वाला शास्त्र) तथा वृक्षायुर्वेद एवं वनस्पति विज्ञान में विशेष योग्यता रखता हो और जिसके इन योग्यताओं से संपन्न अधिकारी सहायक हो।[25] सीताध्यक्ष की देखरेख में सभी खाद्य पदार्थों की वनस्पतियों के उत्कृष्ट बीजों का समय पर संग्रह किया जाता था। राजकीय कृषि फार्मों में जिन व्यक्तियों से काम लिया जाता था वे दास (उदरदास और क्रीतदास आदि) कर्मकर (नियत वेतन पर कार्य करने वाले मजदूर) और कारागार के बंदी। इन लोगों से केवल कार्य कराया जाता था, परंतु कृषि यंत्रों एवं साधनों का प्रबंध इन्हें नहीं सौंपा जाता था इनसे कटाई और बुवाई का काम भी लिया जाता था, परन्तु जुताई का महत्त्वपूर्ण कार्य इनसे नहीं कराया जाता था। जोतने का कार्य राजकर्मचारी ही करते थे।

बढ़ई, लुहार आदि शिल्पी, जमीन खोदने वाले, रस्सी बंटने वाले तथा सपेरे आदि भी खेती की जिम्मेदारियों से अलग रखे जाते थे, हां, उनसे मोटा–मोटा और केवल बताया हुआ काम करवा लिया जाता था। जो कृषि कर्मचारी खेती में लाभ की अपेक्षा हानि अधिक करते थे उनसे हानि का हर्जाना वसूल किया जाता था। जो राजकीय खेत समय पर जोते–बोये नहीं जाते थे उन्हें परती छोड़ देने की प्रथा नहीं थी। ऐसे खेत अधबटाई पर दूसरों को दे दिये जाते थे एवं बटाई पर खेते देने की प्रथा राजकीय क्षेत्र के साथ–साथ निजी क्षेत्र में भी थी। ऐसा न हो पाने की स्थिति में जी के साझियों (स्ववीर्योपजीविनः) को वह भूमि दे दी जाती थी जिनके पास खेती के साधनों का अभाव होता था और जो केवल अपना शारीरिक परिश्रम करके पैदावार करते थे। इन्हें पैदावार का चौथा या पांचवां हिस्सा दिया जाता था। इस संबंध में जी के साझियों के प्रति काफी नरमी का व्यवहार किया जाता था और आश्चर्य है कि आज ढाई हजार वर्ष बीत जाने पर आज तक पश्चिमी उत्तर प्रदेश एवं भारत के बहुत से प्रदेशों में जी के साझियों को पैदावार का इतना ही हिस्सा दिया जाता है जो कौटल्य के समय पर निश्चित हो गया था।

यदि किसान सरकारी जमीन में निजी तालाबों से हाथों से पानी ढो–ढो कर खेत सींचते थे तो पैदावार का पांचवा भाग सिंचाई कर के रूप में देते थे एवं कंधों पर पानी ढोते थे तो चौथा एवं छोटी नालियां तथा नहर आदि बनाकर खेत सींचते थे तो पैदावार का तीसरा भाग देते थे। इसी प्रकार, जो किसान प्राकृतिक नदियों, सरोवरों तथा छोटे तालाबों एवं कुओं से रहट आदि यंत्रों द्वारा खेत सींचते थे वे पैदावार का चौथा भाग राज्य को देते थे।[26] वृक्षों से स्वयं हवा में गिरे फल तथा अपने आप पौधों से गिरी बालें वेदपाठियों की समझी जाती थी एवं खलिहान से रास उठाने के बाद बचे बिखरे दानों पर चुगनेवालों का अधिकार माना जाता था। ठीक समय पर तैयार हुई फसल को सुरक्षित स्थान में रखवा दिया जाता था। इसके साथ ही पुआल व भूसा आदि असार वस्तुओं को भी उठाकर ले जाया जाता था। अनाज रखने का स्थान कुछ ऊंची जगह में बनवाया जाता था, उसी प्रकार के मजबूत तथा घिरे हुए अन्नागारों को बनवाया जाता था तथा उनके उपरी हिस्से न तो आपस में मिले होते थे ओर न ही खाली होते थे। कटे हुए अनाज को रखने (खलिहान) और दाई लेने की जगह (मण्डल) दोनों आस–पास होते थे। खलिहान में काम करने वाले व्यक्ति अपने पास अग्नि नहीं रख सकते थे किंतु उनके पास जल का प्रबंध अवश्य होता था।27 व्यक्तिगत खेती में सभी आपसी एवं संपत्ति संबंधी विवादों का निबटारा सामन्त करते थे। ब्रह्मारण्य, सोमारण्य देवतस्थान, यज्ञस्थान और अन्य पवित्र स्थानों के अलावा खेती के लिए भूमि छोड़ने या देने में सबसे अधिक प्राथमिकता बरती जाती थी। खेती की उन्नति तथा उत्पादन वृद्धि के प्रति राज्य एवं समाज इतना सचेत था कि यदि किसी किसान का पानी टूट जाने से अथवा उसकी अन्य किसी लापरवाही से दूसरे किसान की फसल खराब हो जाती थी तो उसे राज्य की ओर से दण्ड का भागी समझा जाता था। यदि एक–दूसरे को हानि पहुंचाने के लिए वे आपस के खेतों में नुकसान करते थे तो राज्य हस्तक्षेप करता था एवं दोनों पक्षों से हानि से दुगना हर्जाना वसूल किया जाताथा। इस प्रकार राज्य नयी उदीयमान एवं कल्याणकारी खेती का तत्परता के साथ भरण–पोषण एवं संरक्षण कर रहा था। सिंचाई के विषय में भी राज्य कठोर था। किसान अपने व्यक्तिगत खेत सींचने के लिए तालाब बनवाते थे और उन पर उन्हीं का व्यक्तिगत अधिकार माना जाता था। परन्तु इसके बावजूद उन्हें अपना तालाब बेकार कर देने का अधिकार नहीं था। ऐसा कर देने पर और

पाच वर्ष तक उसके बेकार पड़े रहने पर मालिक की मिल्कियत नष्ट हो जाती थी। अपने निजी तालाबों तथा कूप आदि को गिरी पड़ी हालत में रखने का अधिकार किसानों को नहीं था। यदि वे मरम्मत नहीं करते थे तो राज्य को यह अधिकार था कि उनसे लेकर दूसरे परिश्रमी किसानों को दे दें।

यदि किसान अपने उपयोग के लिए तालाब ओर बांध आदि बिल्कुल नये बनाते थे तो पांच वर्ष तक उनसे किसी प्रकार का सिंचाई कर नहीं लिया जाता था। यदि दूसरों के टूटे–फूटे तालाब आदि का पुनः निर्माण करते थे तो चार वर्ष की छूट दी जाती थी। किसानों से आमतौर पर जो सिंचाई कर लिया जाता था वह भूमिकर की तुलना में बहुत हल्का होता था। किसान ऐसे रहट भी बनाने लगे थे जो हवा से चलते थे एवं नदी तथा तालाब का पानी उठा कर सींचते थे। जो किसान तालाब तथा सेतुबंध आदि के स्वामी नहीं थे वे भी मालिकों को पानी का शुल्क देकर अपने खेत सींच सकते थे। इस प्रकार, सिंचाई के क्षेत्र में व्यापारिक दृष्टिकोण आने लगा था। परन्तु ऐसा करते समय किसानों को मिलकर सिचाई साधनों की मरम्मत करवानी पड़ती थी एवं मूल्य का भुगतान नकद सिक्को, फसल आने एवं पैदावार के एक निश्चित भाग के रूप में अदा कर सकते थे। पानी के बंटवारे के नियम इतने कठोर थे कि जो किसान अपना ओसरा न होने पर पानी लेता था अथवा अपने ओसरे का पानी लेते किसान को रोकता था, उसे राज्य की ओर से आर्थिक दण्ड मिलता था।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मौर्य काल में कृषि अर्थव्यवस्था के एक सुदृढ़ स्तम्भ के रूप में स्थापित व्यवस्था थी। जिससे राज्य को कर की प्राप्ति होती थी। मौर्यकालीन कृषि व्यवस्था की समुन्नत जानकारी हमें कौटिल्य द्वारा प्रणीत ग्रन्थ अर्थशास्त्र द्वारा प्राप्त होती है। इसके साथ ही मैगस्थनीज ने भी अपने विवरण में यहां के धान्यों एवं कृषि परम्परा के सम्बन्ध में वर्णन दिया है। मौर्य साम्राज्य में राजाओं एवं सामन्तों द्वारा अनेक नहरों व तालाबों का निर्माण करवाया गया था, जिनका प्रयोग सिंचाई के लिए होता था। इन नहरों का समय–समय पर मरम्मत का कार्य भी किया जाता था। जिससे कि कृषि व्यवस्था किसी भी प्रकार से बाधित न हो सके।

Author's Declaration:

The views and contents expressed in this research article are solely those of the author(s). The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible for any errors, ethical misconduct, copyright infringement, defamation, or any legal consequences arising from the content. All legal and moral responsibilities lie solely with the author(s).

संदर्भ–

1. मैक्रींडल, मैगस्थनीज, पृ. 39
2. वही, पृ. 216
3. वही, पृ. 30
4. वही, पृ. 31
5. वही, पृ. 32
6. वही, पृ. 39
7. अर्थशास्त्र, 2/24
8. वही, 2/24
9. वही, 2/15
10. वही, 2/24
11. जातक कथाएं 5, पृ. 336, 6 पृ. 367, फासबाल द्वारा संपादित
12. विनयपिटक 2, पृ. 207–209
13. अर्थशास्त्र, 9/3
14. वही
15. वही
16. वही
17. वही, 2/5

18. वही, 2/24
19. इंडियन आर्कियोलॉजीरू ए रिव्यू, 1954–55, पृ. 19, कुम्हरार एक्सकेवेशन रिपोर्ट पृ. 24
20. वही, पृ. 24
21. बरुआ, ओल्ड ब्राह्मी इंस्क्रिप्शन्स, पृ. 43
22. ए. एस. आर., 1914–15
23. बरुआ, पूर्वोक्त, पृ. 70–71
24. शर्मा, रामशरण, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, पृ. 198–199
25. अर्थशास्त्र, 2/24
26. वही
27. वही

Cite this Article-

'डॉ0 राजपाल सिंह', 'कौटिल्य का कृषि–दर्शनः साहित्यिक अवधारणा और पुरातात्तिवक प्रमाणों की संगति', Research Vidyapith International Multidisciplinary Journal (RVIMJ), ISSN: 3048-7331 (Online), Volume:2, Issue:04, April 2025.

Journal URL- https://www.researchvidyapith.com/
DOI- 10.70650/rvimj.2025v2i40016
Published Date- 18 April 2025